चतुर्थ अध्याय

ठुमरी में राग एवं ताल

चतुर्थ अध्याय
ठुमरी में राग एवं ताल

ठुमरी विधा में प्रयुक्त गीतों की रचना के लिए उपयुक्त राग एवं ताल के प्रयोग का लोकतत्वों के सन्दर्भ में अध्ययन करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है |

4.1 ठुमरी में राग

4.1.1 'राग' क्या है ?

सर्वप्रथम 'राग' इस शब्द का भारतीय शास्त्रीय संगीत के सन्दर्भ में अर्थघटन क्या है इस पर एक दृष्टिक्षेप करते हैं|

भारतीय संगीत पद्धति में 'राग' संकल्पना अत्यंत वैशिष्ट्यपूर्ण है | विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न प्रकार की संगीत प्रणालियाँ प्रचलित हैं | 'राग' यह भारतीय संगीत प्रणाली की अनुपम विशिष्टता है जो इसे विश्व की अन्य संगीत प्रणालियों से अलग ही अस्तित्व प्रदान करता है | 'रागतत्व' भारतीय संगीत का प्राण है |[128]

'राग' इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'रञ्ज' से है | इस शब्द के एक से अधिक अर्थ हो सकते हैं | संदर्भानुसार अर्थघटन होता है : वर्ण, रंग, रंजक वास्तु, लाल रंग, लालिमा, भावना, हर्ष, प्रेम, आनंद, क्रोध, रोष, खेद, शोक, ईर्ष्या, ईच्छा, संगीत में स्वरों की विशिष्ट योजना या स्वरों का विशिष्ट नियम | [129]

ऐतिहासिक दृष्ट से, भारतीय संगीत में 'राग' इस शब्द का स्पष्ट उल्लेख तथा इसकी संकल्पना सर्वप्रथम 'मतंगमुनि' कृत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ में मिलते हैं | 'बृहद्देशी' ग्रन्थ का समय लगभग ई. स. की तीसरी शताब्दी माना जाता है | तबसे 'राग' की कल्पना का भारतीय संगीत में अस्तित्व है |

'बृहद्देशी' में वर्णित मतंग द्वारा 'राग' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है –

स्वरवर्णविशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुन: |

---

[128] थत्ते अ., (2013). नवरागनिर्मितीची तत्वे. मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 11.

[129] थत्ते अ., (2013). नवरागनिर्मितीची तत्वे. मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 11.

रञ्ज्यते येन सच्चित्तं स राग: सम्मतं सताम् || 130

अथवा---

योऽसौ/ योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरावर्णविभूषित: |

रञ्जको जनचित्तानां स च राग:उदाहरणहृत: || 131

अर्थात् स्वर और वर्ण से विभूषित ऐसी ध्वनि विशेष (या ध्वनि की विशेष रचना) जिससे जनों के चित्त का रंजन हो, उसे ही 'राग' कहते हैं |

'बृहद्देशी' के पश्चात के ग्रंथकारों ने 'राग' की परिभाषा करने के लिए इसी व्याख्या का आधार लिया हो ऐसा प्रतीत होता है |

'संगीत दामोदर' के अनुसार—

यैस्तु चेतांसि रंज्यते जगत्त्रितय वर्तिनाम्

रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभि: || 132

पार्श्वदेवकृत 'संगीत समय सार ' के अनुसार---

स्वरवर्णविशिष्टेन ध्वनिभेदेन वा पुन:

रंज्यते येन सच्चित्तं स राग : संमत: सताम् || 133

'राग विबोध' के ग्रंथकार पं. सोमनाथ के अनुसार –

स्वर, वर्ण भूषितो यो ध्वनिभेदो रंजक: स राग इह |134

पं. अहोबल के अनुसार –

रंजक: स्वरसंदर्भो रागाभिधियते | 135

'रसकौमुदी' में श्रीकंठ ने राग की परिभाषा की है –

---

[130] MATANGMUNI, (n.d.). BRUHADDESHI OF MATANG MUNI VOLUME II. KALAMULASHASTRA SERIES (10). ED. Sharma P. L., Beohar A. B. (1994). New Delhi: Indira Gandhi National Centre for the Arts; Delhi: Motilal Banarasidass Publishers Pvt. Ltd. Pg.76.

[131] MATANGMUNI, (n.d.). BRUHADDESHI OF MATANG MUNI VOLUME II. KALAMULASHASTRA SERIES (10). ED. Sharma P. L., Beohar A. B. (1994). New Delhi: Indira Gandhi National Centre for the Arts; Delhi: Motilal Banarasidass Publishers Pvt. Ltd. Pg.76.

[132] थत्ते अ., (2013). नवरागनिर्मितीची तत्वे. मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 12

[133] थत्ते अ., (2013). नवरागनिर्मितीची तत्वे. मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 13

[134] थत्ते अ., (2013). नवरागनिर्मितीची तत्वे. मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 13

[135] थत्ते अ., (2013). नवरागनिर्मितीची तत्वे. मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 13

सुरसुराणां नरकिन्नराणां निरन्तरं मानसरञ्जनेन
रागो भवेत् पंकजकण शब्द तुल्यो व्युत्पत्तीमादायच योगारूढ:
रम्यध्वनि विशेषस्तु सर्व वर्ण विराजित:
स रागो गीयते तज्ज्ञैर्जगन्मानस रञ्जक: | [136]

प्राचीन काल की मतंग द्वारा की गई और उसके पश्चात के विद्वानों के द्वारा बताई गई 'योऽयं ध्वनिविशेषस्तु' के आधार वाली व्याख्याओं पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि आधुनिक काल में प्रचलित भारतीय संगीत के सन्दर्भ में यह व्याख्या बहुत सामान्य और अस्पष्ट लगती है तथा इसका विस्तार इतना अधिक/बड़ा हो सकता है कि शास्त्रीय कला संगीत के अतिरिक्त अन्य संगीत के प्रकारों में प्रचलित कर्णप्रिय गीतों, धुनों और रचनाओं का भी इसमें समावेश हो सकता है, जो कि अपेक्षित नहीं है |

इसलिए आधुनिक युग में विद्वानों ने प्राचीन व्याख्या पर विचार-विमर्श,मनन-चिंतन करके, अपने विचार 'राग' के विषय में प्रकट किये हैं और 'राग' को परिभाषित किया है |

आधुनिक काल में पं. भातखंडे ने हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति एवं लक्ष्यसंगीत में राग की व्याख्या 'योऽयं ध्वनिविशेषस्तु' इसी प्रकार की है |

एच. ए. पोपले के अनुसार—

"Raaga is the basis of melody in Indian music and a substitute for the Western scale."[137]

"Raagas are different series of notes within the octave, which form the basis of all Indian melodies, and are differentiated from each other by the prominence of certain fixed notes and by the sequence of particular notes."[138]

श्री अशोक रानडे के अनुसार—

"Today, Raga is a basic note-pattern formed by selecting notes from the thirteen tonal intervals conventionally established in the octave space. However, unlike the Western

[136] थत्ते अ., (2013). *नवरागनिर्मितीची तत्वे.* मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 13

[137] Popley, H. A. (1921). *Music of India.* Delhi : Low Price Publications. Pg. 39.
[138] Popley, H. A. (1921). *Music of India.* Delhi : Low Price Publications. Pg. 39.

system of music, the other possible pitch-gradations which could be detected in between the thirteen intervals are explored by the musician during the performance, though the intervals do not figure into notations. The notes are selected from ascending as well as descending progressions. Frameworks, thus, provided by the selected notes(selected from the eligible thirteen) function as the ground plan to be adhered to. The elaboration of raga is to create more and more patterns on the basis of this ground plan." [139]

डॉ. प्रभा अत्रे के अनुसार—

" Broadly speaking, Raag is a system of developing a melodic scheme based upon a scale in which each note is treated in a characteristic way in terms of duration, combination and ascending-descending movements." [140]

डॉ. अनया थत्ते के अनुसार –

" स्वरवर्णांनी युक्त अशा विशिष्ट रंजक स्वरसंगतिंचा व्यक्तिनिष्ठ पद्धतीने स्वर,लय आणि बंदिशिंच्या माध्यमातून, शास्त्रनियमांच्या आधारे केलेला आविष्कार म्हणजे राग होय." अर्थात्

स्वरवर्णों से युक्त विशिष्ट रंजक स्वरसंगतियों का व्यक्तिनिष्ठ पद्धति से स्वर, लय और बंदिश के माध्यम से, शास्त्रनियमों के आधार पर किया हुआ आविष्कार ही 'राग' कहलाता है | [141]

4.1.2 राग के विषय में कुछ पारिभाषिक शब्द- थाट, आरोह, अवरोह, पकड़, जाति, वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी, वर्ज्य/वर्जित

थाट

---

[139] Ranade, A. D. (1997). *Hindustani Music.* New Delhi: The Director, National Book Trust, India. Pg. 31.

[140] Atrre, P. (2016). Enlightning the Listener. Delhi: B. R. Rhythms. Pg. 7

[141] थत्ते अ., (2013). *नवरागनिर्मितीची तत्वे.* मुंबई: संस्कार प्रकाशन. पृष्ठ. 16

सप्तक के स्वरों की एक ऐसी क्रमिक विशिष्ट रचना, जिससे राग उत्पन्न हो सके |[142] कर्नाटक संगीत पद्धति में थाट के लिए 'मेल' शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है | गाणितिक दृष्टि से सप्तक के स्वरों से कुल मिलाकर 64 थाट मिल सकते हैं | किन्तु उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अंतर्गत नियमों के आधार पर कुल 32 थाटों की संभावना है | व्यावहारिक दृष्टि से आधुनिक हिन्दुस्तानी राग-संगीत के चलन को देखते हुए पं. भातखंडे ने उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिक के लिए उपयोगी ऐसे 10 थाटों का विवरण दिया है :

1) थाट बिलावल – सभी स्वर शुद्ध

2) थाट कल्याण – म तीव्र, शेष स्वर शुद्ध

3) थाट खमाज – नि कोमल, शेष स्वर शुद्ध

4) थाट भैरव – रे और ध कोमल, शेष स्वर शुद्ध

5) थाट पूर्वी – रे, ध कोमल; म तीव्र और शेष स्वर शुद्ध

6) थाट काफी – ग और नि कोमल, शेष स्वर शुद्ध

7) थाट आसावरी – ग, ध और नि कोमल, शेष स्वर शुद्ध

8)थाट मारवा – रे कोमल, म तीव्र और शेष स्वर शुद्ध

9) थाट तोड़ी – रे, ग और ध कोमल; म तीव्र और शेष स्वर शुद्ध

10) थाट भैरवी – रे, ग. ध और नि कोमल; शेष स्वर शुद्ध

आरोह-अवरोह [143]

राग के चलन के अनुसार स्वरों के चढ़ते क्रम को 'आरोह' और उसके विपरीत स्वरों के उतारते क्रम को 'अवरोह' कहते हैं |

पकड़ [144]

[142] भातखंडे, वि. ना. सं. श्रीवास्तव, ह. (2017). *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका द्वितीय पुस्तक.* इलाहाबाद: संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 12

[143] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 119

राग का बोध/ राग की पहचान कराने वाले छोटे से छोटे स्वर-समूह को 'पकड़' कहा जाता है |

राग जाति [145]

राग के आरोह-अवरोह में प्रयोग किए गए स्वरों की संख्या के आधार पर उसका वर्गीकरण जिन प्रकारों में किया जाता ह, उन प्रकारों को 'राग-जाति' कहा जाता है | आरोह में प्रयुक्त स्वरों की संख्या और अवरोह में प्रयुक्त स्वर संक्या के आधार पर राग की जाति निश्चित होती है | पाँच स्वर के लिए 'औडव', छ: स्वर के लिए 'षाडव' और सात स्वर के लिए 'सम्पूर्ण' संज्ञाएँ हैं | निम्नलिखित कोष्टक से पता चलता है कि स्वर-संख्या की दृष्टी से रागों की कुल 9 जातियाँ हो सकती हैं, जिनके नाम भी कोष्टक में ही दी गए हैं :

आरोह ⟶ अवरोह ↓	5 स्वर- औडव	6 स्वर- षाडव	7 स्वर- सम्पूर्ण
5 स्वर- औडव	औडव-औडव	षाडव-औडव	सम्पूर्ण-औडव
6 स्वर- षाडव	औडव-षाडव	षाडव-षाडव	सम्पूर्ण-षाडव
7 स्वर- सम्पूर्ण	औडव-सम्पूर्ण	षाडव-सम्पूर्ण	सम्पूर्ण-सम्पूर्ण

वादी [146]

राग में प्रयुक्त स्वरों में, अन्य स्वरों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वर को 'वादी' स्वर कहते हैं | अन्य स्वरों की अपेक्षा वादी स्वर का प्रयोग बार्-बार किया जाता है और उस प् अधिक ठहरा भी जाता है | वादी स्वर को रागरूपी राज्य का 'राजा' कहा गया है | वादी स्वर को अंश स्वर, जीव स्वर अथवा प्रधान स्वर भी कहते हैं |

संवादी [147]

राग का द्वितीय महत्वपूर्ण स्वर 'संवादी' कहलाता है | इसका प्रयोग तथा न्यास वादी स्वर की अपेक्षा कम और अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक होता है | रागरूपी राज्य के 'मंत्री' की उपमा इसे देते हैं | यह वादी स्वर का परम सहायक होता है और उससे अटूट संवाद बनाए रखता है | वादी-संवादी स्वरों में षडज-माध्यम या षडज-पंचम भाव अवश्य रहता है |

---

[144] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 121
[145] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 122
[146] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 123
[147] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 124

अनुवादि [148]

राग के वादी-संवादी स्वरों के अतिरिक्त राग में प्रयुक्त अन्य शेष स्वर 'अनुवादि' स्वर कहलाते हैं | अनुवादि स्वर को 'अनुचर' की उपमा दी गई ही |

विवादी [149]

कुछ स्वरों का प्रयोग राग में नियमित रूप से नहीं किया जाता, किन्तु रंजकता बढ़ाने के लिए क्वचित रूपसे बड़ी कुशलता से उन्हें अत्यंत अल्प प्रमाण में लगाते हैं, राग में उनका नियनेट प्रयोग राग रूप को बिगाड़ता है | ऐसे स्वरों को सम्बंधित राग का 'विवादी' स्वर कहा जाता है | इसे राग का 'शत्रु' भी कहा गया है क्योंकि इसके अति और/अथवा अयोग्य उपयोग से रागहानी होती है |

वर्ज्य [150]

राग में प्रयुक्त न होने वाले स्वर को 'वर्ज्य' स्वर कहते हैं |

4.1.3 ठुमरी विधा के गीतों में प्रयुक्त राग और उनकी स्थिति

4.1.3.1 ठुमरी विधा के प्रकारों के लिए कौनसे राग प्रयुक्त होते हैं ?

इसके विषय में संगीत जगत में ऐसा मत प्रचलित है कि सामान्यत: चंचल प्रकृति के राग, जिनके मूल लोक संगीत की धुनों में है, वे ही ठुमरी विधा के अंतर्गत प्रयुक्त हुए हैं | ऐसे रागों के उदाहरण हैं—काफी, पीलू, बरवा, सिन्दूरा, गारा, खमाज, देश/देस, पहाड़ी, झिंझोटी, तिलंग, जोगिया, कालिंगड़ा, भैरवी आदि | अधिकतर ठुमरी, दादरे, होली, कजरी, चैती, झूला आदि इन्हीं में से किसी राग के स्वरों में बंधे हुए मिलते हैं | इनके लिए आधुनिक युग में 'ठुमरी के राग' या 'उपशास्त्रीय संगीत के राग' ऐसी संज्ञाएँ भी प्रयोग में लाई जाती हैं |

ठुमरी के इतिहास पर दृष्टिक्षेप से यह तो सिद्ध होता है की इन गीतों के स्वर-पक्ष पर केवल उत्तर भारत के लोक संगीत की धुनों का प्रभाव नहीं है | ठुमरी की शुरूआती परंपरा में लखनऊ दरबार के रसिक और शिष्ट सांगीतिक वातावरण का भी बड़ा प्रभाव रहा है | इस कारण उसमें कुछ ऐसी रचनाओं का भी निर्माण हुआ जो कि ख्याल पद्धति के रागों के स्वरों में बंधी थी | उनमें से कुछ रचनाएँ आज भी उपलब्ध हैं | लोक संगीत की धुनों का प्रभाव तो तत्पश्चात के समय की – ख़ास कर पूरब अंग की – देन है | इस कारण से ठुमरी की कुछ

[148] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 124

[149] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 125

[150] श्रीवास्तव, ह. (2018). *राग परिचय भाग 1.* इलाहाबाद:संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 123

बंदिशें ऐसे रागों में बंधी मिलती हैं जो कि ठेठ 'ठुमरी के राग' न होकर 'ख्याल के राग' कहे जाते हैं |उदाहरण – सोहनी, बागेश्री, बिहाग, तिलक कामोद |

इस शोध कार्य के लिए एकत्रित करके संग्रहित की गयी ठुमरी की रचनाओं की दो सूचियाँ हैं जो परिशिष्ट 1 तथा परिशिष्ट 2 में दी गईं हैं | परिशिष्ट 1 में विविध कलाकारों द्वारा ठुमरी की प्रत्यक्ष प्रस्तुति के रिकॉर्डिंग है और परिशिष्ट 2 में पुस्तकों में प्रकाशित ठुमरी की बंदिशों का संग्रह किया है | इनमें से प्रत्येक ठुमरी के राग, ताल, वर्ग, विषय तथा स्रोत अथवा कलाकार की माहिती को सारणा के रूप में प्रस्तुत किया है | इस माहिती के आधार पर प्रस्तुत संग्रह के सन्दर्भ में ठुमरी की रचनाओं में प्रयुक्त राग और उनकी स्थिति के विषय में विश्लेषण किया है |

4.1.3.2 प्रकाशित ठुमरी रचनाओं की सूची के अनुसार राग और उनमें रचना की संख्या का कोष्टक

राग	रचना-संख्या
खमाज	44
भैरवी	21
काफी	18
देस	17
पीलू	15
तिलक कामोद	13
मि. भैरवी	10
मि. पहाड़ी	9
तिलंग	9
मि. तिलंग	8
मि. पीलु	8
बिहाग	8
मि. खमाज	8
धानी	7
मि. देस	6
मि. गारा	6
गारा	6
मि. काफी	6
जंगला	6
पीलू-बरवा	6
नट-मल्लार	5
मि. मांजखमाज	5
कुकुभ	4
परज	4
सूहा	3
कालिंगडा	3
मि. कनकांगी	3

गौरी	3
कुकुभ-सरपरदा	2
सोरठ	2
पहाड़ी-झिंझोटी	2
पहाड़ी	2
काफी	2
खम्बावती	2
झिंझोटी	2
मि. झिंझोटी	2
जयजयवंती	2
पीलू जंगला	2
मि. मारू बिहाग	2
खमाज	2
सिंध काफी	2

मि. शिवरंजनी	1
बहार	1
मि. मांड	1
कालिंगडा	1
जोगी-आसावरी	1
माँड	1
गौड़ मल्हार	1
परज-कालिंगडा	1
काफी-सिन्दूरा	1
वृन्दावनी सारंग	1
जोगिया	1
पलासी	1
मि. गारा मल्हार	1

सिंध खमाज	1
बिहागड़ा	1
सिंधुरा काफी	1
मि. मांज खमाज	1
तिलक बिहारी	1
मि. काफी मल्हार	1
तोड़ी-भैरवी	1
एक धुन	1
केदार	1
बागेश्री	1
बागेश्री (मि.)	1
मि. नायकी कानड़ा	1
मि. मांड भैरव	1
मि. मल्हार	1

मि. जोगिया	1
कल्याण	1
मि. मध्माद सारंग	1
मि. काफी रंजनी	1
मि. सारंग	1
नट-मल्लार+छाया	1
नट	
बरवा	1

4.1.3.3 संग्रहित ठुमरी रिकॉर्डिंग के आधार पर राग और उनमें रचनाओं की संख्या का कोष्टक

राग	रचना-संख्या
भैरवी	25
पिलू	15
मि. मांज खमाज	14
खमाज	13
मि. खमाज	12
मि. पिलू	9
मि. भैरवी	9
मि. तिलक कामोद	8
पहाडी	6
मि. गारा	6
मि. मांड	5
जोगिया	5
मि. झिंझोटी	4
काफी	4
तिलक कामोद	4
सोहनी	4
तिलंग	3
कौशिकध्वनी/ भिन्न षडज	3
मि. काफी	3
मांज खमाज	3
मांड	3
किरवाणी	2
पीलू	2
मि. किरवानी	2
देस	2
मि.काफी	1
मि. बिहाग	1
मि. कनकांगी	1
कालिंगडा	1
चंद्रकंस	1

मि. तिलंग	1
मि.नट	1
बिहाग	1
खमाज	1
धून	1
मि. पहाड़ी	1
मि. देस	1

धनाश्री	1
मि. नट	1
मि.गारा	1
मि. नायकी कानडा	1
सिंध भैरवी	1
मि. परज	1

धुन-शुद्ध स्वर	1
मि. पहाड़ी	1
मि. जोगीया	1
झिंझोटी	1
मि. देश	1

ठुमरी में रागों की स्थिति के बारे में विख्यात गायक **पं. अजोय चक्रवर्ती** जी का मत इस प्रकार है: **“हर राग में ठुमरी गाया जा सकता है | ठुमरी अलग कोई चीज़ नहीं है | राजा अगर दरबार में बैठे तो अदब अलग है, अगर वही राजा फूल खरीदने जाए तो अलग (मूड में) है | वैसे ही राग संगीत भी वैसा ही है, एक हद के बाद राग को जाने का इजाज़त नहीं है मगर ठुमरी हो तो जा सकते हैं |”** [151] राग के नियमों की शिथिलता को समझाने के लिए इस प्रकार से उदहारण दिया है | इस हिसाब से कोई भी राग में निश्चित प्रकार के स्वर-लगाव और विशिष्ट गान-पद्धति का प्रयोग करने से ठुमरी प्रस्तुत हो सकती है |

बनारस की ठुमरी कलाकार **श्रीमती सुचरिता गुप्ता** जी ने शोधार्थी से हुई बात चीत में यही मत व्यक्त किया है कि **हम किसी भी राग में ठुमरी गा सकते हैं | भाव ही करना है तो यमन, कलावती जैसे रागों में भी शक्य है | यह कलाकार की कुशलता पर निर्भर है कि वह किसी ख्याल के राग में भी ठुमरी के भावों का कैसे निर्वाह कर सकता है |** [152]

[151] परिशिष्ट 1 विविध कलाकारों द्वारा ठुमरी के प्रस्तुतिकरण के रिकॉर्डिंग के संग्रह की सूची : क्र. 2
[152] श्रीमती सुचरिता गुप्ता से दि. 09-10-2018 को बनारस में हुई प्रत्यक्ष बातचीत

आधुनिक युग में, पारम्पारिक पूरब अंग आर पंजाब अंग की ठुमरियों के व्यतिरिक्त कुछ विद्वान कलाकारों द्वारा नई रचनाओं का कार्य भी होता हुआ दृष्टिगोचर होता है | ऐसे कलाकारों द्वारा ठुमरी की मूल प्रकृति को क्षति पहुँचाए बिना, इसी विधा के अंतर्गत नई-नई संभावनाओं को खोजने का प्रयत्न हो रहा है | इनमें पद्म विभूषण श्रीमती गिरिजा देवी, पद्म भूषण डॉ. प्रभा अत्रे , पद्म भूषण श्रीमती शोभा गुर्टू इनके जैसी हस्तियों का योगदान रहा है |

4.1.3.4 रागों की शुद्ध एवं मिश्र स्थिति

रचनाओं में रागों की शुद्धता की दृष्टि से 4 वर्ग की रचनाएँ मिलती हैं : (1) शुद्ध राग (2) मिश्र राग (3) जोड़-राग/ एक से अधिक शुद्ध या मिश्र राग (4) अस्पष्ट

ठुमरी की प्रकाशित रचनाओं के संग्रह में राग की स्थिति के आंकड़े

शुद्ध राग	215
मिश्र राग	86
जोड़-राग/ एक से अधिक राग	19
अस्पष्ट	1

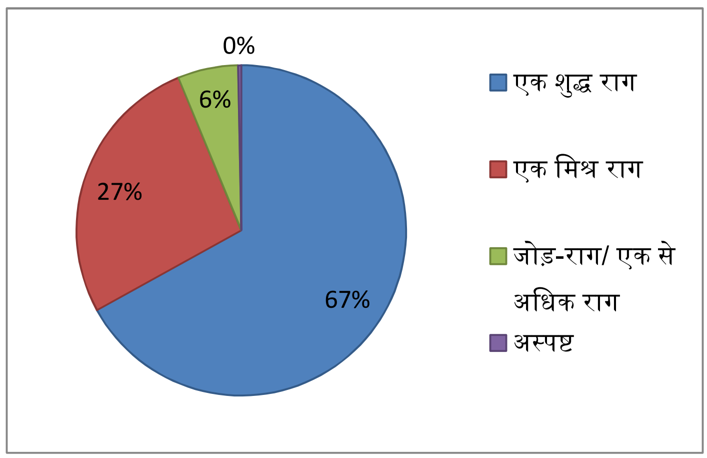

ठुमरी की प्रस्तुतिओं के रिकॉर्डिंग के संग्रह में राग की स्थिति के आंकड़े

एक शुद्ध राग	101
एक मिश्र राग	86
जोड़-राग/ एक से अधिक राग	0
अस्पष्ट	2

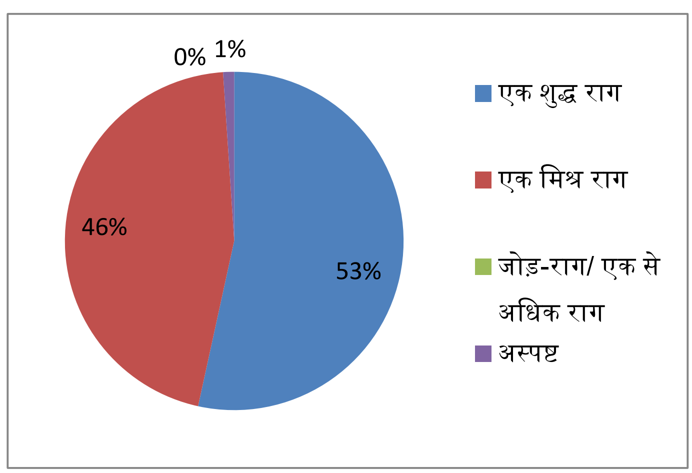

उपरोक्त आंकड़े दर्शाते हैं कि **पुस्तकों में उपलब्ध ठुमरी की रचनाओं में शुद्ध राग में बंधी रचनाओं का प्रभुत्व है , जबकि ठुमरी की प्रस्तुतिओं के रिकॉर्डिंग में शुद्ध राग में बंधी रचनाओं के साथ साथ मिश्र राग में प्रस्तुत रचनाओं का प्रमाण लगभग एक जैसा है | ठुमरी के प्रस्तुतीकरण में मिश्र रागों के व्यापक प्रचार से उसके उपशास्त्रीय होने का पूर्ण प्रत्यय मिलता है |**

4.1.3.5 मूल रागों के वर्गों में रचनाओं की संख्या

इस अभ्यास के हेतु रागों को उनके थाट के अनुसार बांटा नहीं गया है | यदि ऐसा करेंगे तो जो मिश्र या जोड़-राग उपयुक्त हुए हैं उनका वर्गीकरण थाट में करना कठिन हो जाएगा क्योंकि राग अपनी मिश्र स्थिति में उसके नियमित स्वरों को छोड़कर अन्य स्वर भी ग्रहण कर सकता है | अत: रचना के स्वर वे कौनसे मूल राग के समीप हैं एवं स्वरों की चलन कैसी है इसके आधार पर सम्बंधित मूल रागों के वर्गों में बाँटा है | उदाहरण, काफी, मिश्र काफी, काफी मल्हार, पिलू आदि काफी (सम्बंधित मूल राग) वर्ग के राग हैं | इस प्रकार इस अभ्यास के अंतर्गत ठुमरी विधा की जिन रचनाओं का संग्रह किया है उनके रागों को मूल रागों के वर्गों में विभाजित किया है जो निम्न प्रकार से है :

1) कल्याण वर्ग – केदार, कल्याण, मि. मारू बिहाग

2) काफी वर्ग— काफी, मि. काफी, पीलू, मि. पीलू, चन्द्रकंस, धनाश्री, मि. नायकी कानडा, काफी-सिन्दूरा, जंगला, जयजयवंती, धानी, पलासी, पीलू जंगला, पीलू-बरवा, बरवा, बहार, बागेश्री, मि. बागेश्री, मि. काफी मल्हार, मि. काफी रंजनी, मि. मध्माद सारंग, मि. मल्हार, मि. शिवरंजनी, मि. सारंग, वृन्दावनी सारंग, सिंध काफी, सिंधूरा काफी, सूहा, सोरठ

3) खमाज वर्ग--- खमाज, मि. खमाज, खम्बावती, गारा, गौड़ मल्हार, झिंझोटी, तिलंग, तिलक कामोद, तिलक बिहारी, देस, नट-मल्लार, पहाड़ी-झिंझोटी, मि. झिंझोटी, मि. तिलंग, मि. देस, सिंध खमाज

4) बिलावल वर्ग--- पहाड़ी, मि. पहाड़ी, बिहाग, मि. बिहाग, मांड, मि. मांड, मांज खमाज, मि. मांज खमाज, कौषिकध्वनि/ भिन्न षडज, नट, मि. नट, कुकुभ, बिहागड़ा

5) भैरवी वर्ग--- तोड़ी-भैरवी, भैरवी, मि. भैरवी, सिंध भैरवी

6) भैरव वर्ग--- कालिंगड़ा, जोगिया, मि. जोगिया, गौरी, मि. मांड भैरव

7) पूर्वी वर्ग--- परज, मि. परज

8) मारवा वर्ग--- सोहनी

ठुमरी की प्रकाशित रचनाओं के संग्रह में राग-वर्ग में रचना के आंकड़े

राग वर्ग	रचनाओं की संख्या
कल्याण	4
काफी	94
खमाज	135
पूर्वी	4

बिलावल	32
भैरव	10
भैरवी	32
अस्पष्ट	10

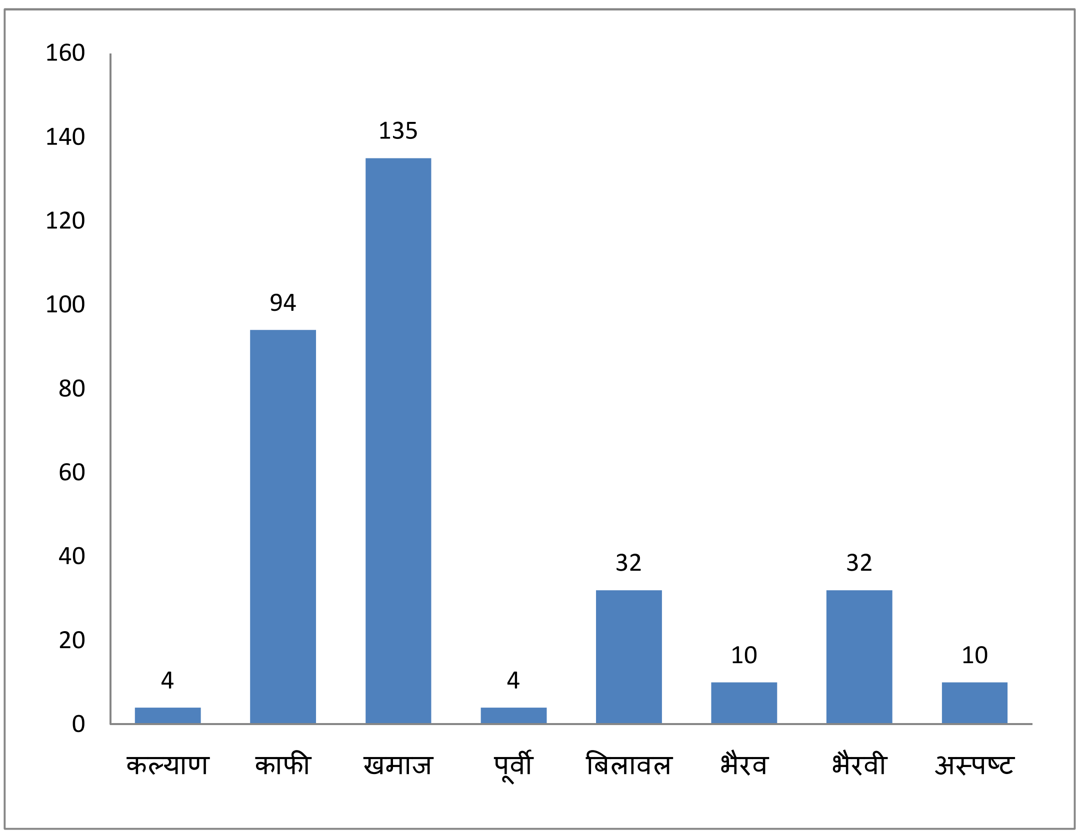

ठुमरी की प्रस्तुतिओं के रिकॉर्डिंग के संग्रह में रागों के वर्गों के आंकड़े

राग वर्ग	रचनाओं की संख्या
काफी	37
खमाज	58
बिलावल	42
भैरव	7
भैरवी	35
मारवा	4
अस्पष्ट	5
पूर्वी	1

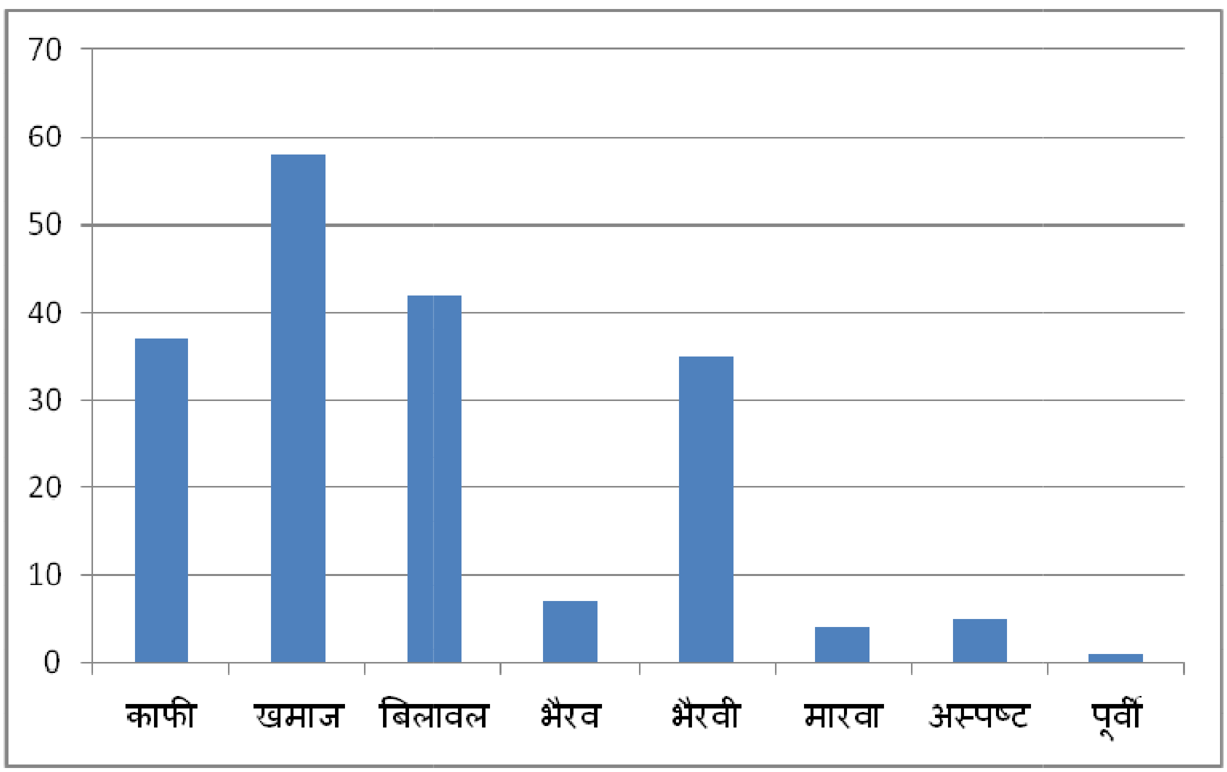

4.2 ठुमरी में लय और ताल

4.2.1 लय और ताल

भारतीय शास्त्रीय संगीत में संरचना के महत्वपूर्ण अंगों में से एक 'ताल' है | 'ताल' का सम्बन्ध समय या काल से है | संगीतोपयोगी ध्वनि के साथ काल का समन्वय करने हेतु ताल प्रणाली का विकास हुआ है, जिससे संगीत में सुव्यवस्था और अनुशासन आता है |

संगीत में समय/काल की गति को दर्शाने के लिए 'लय' शब्द का प्रयोग करते हैं | लय समय की नियत समान गति है, जिसे प्रत्यक्ष दर्शाने के लिए किसी आघात से उत्पन्न ध्वनि (उदाहरण. हथेली के आघात से उत्पन्न ताली) का आधार लेकर समान समयांतर पर एक के बाद एक ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है | ऐसे समान समयान्तरों पर सुनाई देनेवाली क्रमिक ध्वनियों के बीच होनेवाली विश्रांति को 'लय' कहा गया है | लय के मुख्य तीन भेद हैं – द्रुत, मध्य और विलंबित | बहुत तेज – शीघ्रतम लय द्रुत लय, उससे दुगुनी मंद लय मध्य लय और मध्य से दुगुनी मंद लय विलंबित लय होती है |

क्रियानन्तर विश्रान्तिर्लय: स त्रिविधो मत: |
द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुत: शीघ्रतमो मतः ||
द्विगुण द्वि गुणौ ज्ञेयौ तस्मान्मध्यविलम्बितौ |[153]

लय के सम्बन्ध में 'हिन्दी साहित्य कोष' में बताया है, "लय की निष्पत्ति गति/प्रवाह व यति/विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है | लय का स्वरुप तत्वत: आवृत्तिमूलक है और इसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनों में रहती है | संगीत और कविता में लय काल सापेक्ष रहती है और चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला में दृक् सापेक्ष | इस प्रकार लय की व्याप्ति सभी ललितकलाओं में पी जाती है | गायन, वादन एवं नृत्य – संगीत के इन तीनों अंगों को सूत्रबद्ध करनेवाली वस्तु लय ही है |" [154]

---

[153] शार्ङ्गदेव. (n.d.). *शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर.* तृतीय खंड पञ्च-षष्ठ अध्याय. अनु. एवं सं. चौधरी, सु. (2006). नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स. पृ. 35

[154] शर्मा, चारू (2016). उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आने वाली विभिन्न गायन शैलियों में प्रयुक्त रागों एवं तालों की व्यावहारिकता (शोध प्रबंध). Retrived from `http://hdl.handle.net/10603/206899`

भारतीय संगीत में काल के प्रवाह - लय को नियंत्रित करने का और काल के मापन का साधन 'ताल' है | ताल को गायन, वादन और नृत्य की प्रतिष्ठापना का आधार कहा गया है | किसी भी सांगीतिक रचना का ढाँचा बनाने में ताल का कार्य मुख्य रहता है |

तालस्तल प्रतिष्ठायामिति घातोघञि स्मृत: |

गीतं वाद्यम तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ||[155]

'संगीतार्णव' ग्रन्थ में ताण्डव नृत्य से 'ता' और लास्य से 'ल' वर्णों के संयोग से 'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति बताई है |

ताण्डवस्याद्यवर्णेन लकारो लास्य शब्दभाक् |

यदा संगच्छते लोके तदा ताल: प्रकीर्तितः ||[156]

'संगीत दर्पण' ग्रन्थ के अनुसार –

ताकारे शंकर: प्रोक्तो लकारे पार्वती स्मृता |

शिवशक्ति समायोगात्ताला नामाभिधीयते ||[157]

ताकार से शंकर और लकार से पार्वती तथा इन दोनों के योग को 'ताल' कहा गया है |

'रागार्णव' ग्रन्थ के अनुसार –

हस्तद्वयस्य संयोगे वियोगे चापि वर्तते |

व्याप्तिमान् यो दशप्राणै: स काल्स्ताल्सन्ज्ञक: ||[158]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारतीय संगीत की परंपरा में लय और ताल की कल्पना प्राचीन काल से चली आ रही है | भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से लेकर मध्यकालीन संगीत रत्नाकर तक संगीत में ताल का बड़ा ही महत्व रहा है तथा उसकी विकसित ताल प्रणाली का विस्तृत वर्णन भी इन ग्रंथों में उपलब्ध है |

---

[155]शार्ङ्गदेव. (n.d.). *शाङर्गदेव कृत संगीत रत्नाकर.* तृतीय खंड पञ्च-षष्ठ अध्याय. अनु. एवं सं. चौधरी, सु. (2006). नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स. पृ. 35

[156] सेन, अ. क. (2005). *भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन.* भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी. पृ.40

[157] सेन, अ. क. (2005). *भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन.* भोपाल: मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. पृ.40

[158] सेन, अ. क. (2005). *भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन.* भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी. पृ.40

4.2.2 ताल के विषय में कुछ पारिभाषिक शब्द- मात्रा, खंड, सम, भरी, खाली, जाती, ठेका

मात्रा

ताल के अंतर्गत, समय को मापने की सबसे छोटी इकाई यानी की सबसे छोटा कालखंड 'मात्रा' कहलाता है | मात्राओं के विविध समूह मिलकर ताल की रचना होती है |

खंड

प्रत्येक ताल की कुल मात्राओं को अधिक छोटे मात्रा-समूहों में विभाजित किया होता है जिन्हें ताल के 'खंड' कहते हैं | इन ताल-खण्डों से ताल की गति के बीच विभिन्न स्थानों पर निश्चित क्रम में वजन/ जर्ब स्पष्ट होते हैं | ये खंड ताल की जाती निश्चित करने में भी सहायक होते हैं |

ठेका

भारतीय संगीत में मुख्य ताल वाद्य तबला या मृदंग से जो ध्वनियाँ/बोल उत्पन्न हो सकती हैं उनका उपयोग करके, विभिन्न तालों की निश्चित मात्राओं के समूह के अनुसार इन बोलों को के भी समूह बनाये गए हैं | इस तरह हर एक ताल की मात्राओं की संख्या के साथ साथ बोल भी निश्चित हो गए हैं|

ताल के ऐसे निश्चित बोल-समूह को उसका 'ठेका' कहते हैं | यह ठेका ताल का मूलभूत ढाँचा होता है | उसके आधार पर उस ताल में विस्तार कर सकते हैं |

सम

सामान्य रूप से ताल की प्रथम मात्रा को 'सम' कहते हैं | गायन-वादन या ठेके की शुरुआत यहाँ से करते हैं | इस मात्रा का विशेष महत्व रहता है और गायन-वादन की क्रिया में 'सम' पर आने को बहुत महत्व है | इसका प्रदर्शन विशेष जोर देकर किया जाता है | प्राय: प्रस्तुतीकरण की समाप्ति भी इसी स्थान पर आकर की जाती है |

ताली, भरी और खाली - ताल के खण्डों की प्रथम मात्रा पर अगर हाथ से ताली देकर दर्शाते हैं तो उस मात्रा को 'ताली' कहते हैं | ताली से शुरू होनेवाले खंड में बोल तबला एवं डग्गा दोनों पर बजते हैं और सुनने में उनकी ध्वनि भरी हुई लगती है | इसलिए ताली से शुरू होनेवाले खंड को अक्सर 'भरी' कहते हैं | जिस खंड की प्रथम मात्रा पर हाथ से ताली देकर नहीं दर्शाते उस खंड तथा उस मात्रा को 'खाली' कहा जाता है | खाली के बोल प्राय: केवल तबले पर बजते हैं और डग्गा नहीं इस्तेमाल करते | परिणाम स्वरुप खाली के बोलों की ध्वनि सुनने में भरी की अपेक्षा कुछ 'खाली' लगती है |

उदाहरण:

त्रिताल का ठेका [159]

मात्रा	1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16	1
बोल	धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा	धा
चिह्न	x	2	o	3	x
	सम	ताली	खाली	ताली	सम
	भरी	भरी	खाली	भरी	

जाति

ताल के खण्डों में मात्राओं के प्रयोगानुसार तालों को विभिन्न जातियों में विभाजित किया गया है |

चतुर्मात्रिक (एक खंड में 4 मात्रा) तालखण्डों के ज़र्बों पर भरी और खाली दी जाने वाले तालों को चतस्रजातीय कहा जाता है, जैसे कहरवा, त्रिताल, पंजाबी इत्यादि| त्रिमात्रिक (एक खंड में 3 मात्रा) तालखण्डों के ज़र्बों पर भरी और खाली दी जाने वाले तालों को तिस्रजातीय कहा जाता है, जैसे दादरा | कभी कभी चतस्र और तिस्र के मिले जुले रूपवाले ताल भी देखने को मिलते हैं, जैसे

द्विमात्रिक (2 मात्रा) तालखंड + त्रिमात्रिक (3 मात्रा) तालखंड = पंचमात्रिक (5 मात्रा) तालार्ध x 2 = दशमात्रिक (10 मात्रा) झपताल – खंडजातीय |

त्रिमात्रिक (3 मात्रा) तालखंड + द्विमात्रिक (2 मात्रा) तालखंड + द्विमात्रिक (2 मात्रा) तालखंड = सप्तमात्रिक (7 मात्रा) रूपकताल – मिश्रजातीय |

त्रिमात्रिक (3 मात्रा) तालखंड + चतुर्मात्रिक (4 मात्रा) तालखंड = सप्तमात्रिक (7 मात्रा) तालार्ध x 2 = चतुर्दशमात्रिक (14 मात्रा) दीपचंदी ताल, झूमरा ताल – मिश्रजातीय इत्यादि |

विभिन्न तालों में, समसंख्यकमात्रिक तालखण्डों वाले तालों का वज़न प्रयोग में सरल और विषमसंख्यक मात्रिक तालखंडों वाले तालों का वज़न अपेक्षाकृत कठिन और वक्र होता है |

इन सभी तालों में से चतस्र जाति का 4 मात्राओं के एक तालखंड वाला मूलभूत ताल सबसे सरल है | प्राचीन भारतीय ताल पद्धति में इस ताल का '**आदिताल**' के नाम से वर्णन किया है | अत्यंत सरल एवं स्वाभाविक होने

[159] श्रीवास्तव, गि. च. (2008). *ताल परिचय भाग एक.* इलाहबाद: रूबी प्रकाशन. पृष्ठ 118

के कारण आदिकाल से ही लोक में इसका प्रयोग होता आया है तथा विश्व के हर प्रान्त के लोक संगीत में इस ताल का अस्तित्व किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है | संभवत: इसीलिए पंडित शाङ्र्गदेव ने देशी तालों में सर्वप्रथम आदिताल की गणना की है | [160] सरलतम होने के कारण इसका व्यवहार 'रास' नामक प्राचीन लोकनृत्य-नाट्य में हुआ | इस वजह से आगे चलकर लोक में आदिताल को '**रासताल**' कहा जाने लगा | [161]

4.2.2 ठुमरी शैली में व्यवहृत ताल

वर्तमान समय में ठुमरी शैली के साथ बजाये जाने वालेवाले तालों में त्रिताल, सितारखानी/पंजाबी, जत/षोडशमात्रिक चाँचर, कहरवा, दीपचंदी/चतुर्दशमात्रिक चाँचर, दादरा आदि हैं |

श्री शत्रुघ्न शुक्ल के अनुसार ठुमरी और तत्सम प्रकार रूपक, झपताल, एकताल आदिमें भी मिलते हैं | आडा चौताल का भी उल्लेख क्वचित अस्तित्व के रूप में किया है | [162] जबकि पीटर मॅनुएल के मतानुसार ठुमरी शैली के ताल चाँचर (14 और 16 मात्रिक दोनों), सितारखानी, पंजाबी, कहरवा और दादरा हैं | सुप्रसिद्ध गायिका विदुषी डॉ. प्रभा अत्रे ने उपरोक्त तालों के व्यतिरिक्त धमार ताल को भी ठुमरी शैली के योग्य बताया है [163], यद्यपि व्यवहार में धमार ताल में ठुमरी को कोई प्रस्तुत नहीं करता यह सामान्य अवलोकन है |

4.2.3 ठुमरी विधा में सामान्य रूप से प्रयुक्त कुछ तालों का विवरण

1) ताल – दादरा [164]

मात्रा- 6

खंड- 2 (3+3)

ताली 1 पर , खाली 4 पर

---

[160] पञ्चमस्तालाध्याय, श्लोक 239 से 253 पर्यन्त.

[161] पञ्चमस्तालाध्याय, श्लोक 261.

[162] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली :हिन्दीमाध्यम कार्यान्वय निदेशालय , दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ. 231.

[163] अत्रे, प्र. (2016). *सुस्वराली.* दिल्ली: बी. आर. रिधम्स. पृष्ठ 138

[164] श्रीवास्तव, गि. च. (2008). *ताल परिचय भाग एक.* इलाहबाद: रूबी प्रकाशन. पृष्ठ 120

ठेका-

मात्रा	1	2	3	4	5	6	1
बोल	धा	धिं	ना	धा	तिं	ना	धा
चिह्न	x			o			x

2) ताल – कहरवा [165]

मात्रा – 8

खंड- 2 (4+4)

ताली 1 पर, खाली 5 पर

ठेका-

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	1
बोल	धा	गे	न	ति	न	क	धि	न	धा
चिह्न	x				o				x

इस ताल का एक प्रचलित स्वरुप चतुर्मत्रिक भी है जो कि इस प्रकार है :

ठेका-

मात्रा	1	2	3	4	1
बोल	धागे	नति	नक	धिन	धागे
चिह्न	x		o		x

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की ताल पद्धति के अंतर्गत आनेवाला ताल 'कहरवा' एक प्रकार से प्राचीन आदिताल का वर्तमान संस्करण है |[166] कहा जाता है कि 'कहार' जाती के नाम पर इसका नाम पड़ गया | लेकिन केवल इसी जाती के नहीं, बल्कि पूरे भारत में कई लोकजातियों के लोक संगीत एवं शिष्ट समाज के अन्य सुगम,

---

[165] श्रीवास्तव, गि. च. (2008). *ताल परिचय भाग एक.* इलाहबाद: रूबी प्रकाशन. पृष्ठ 123

[166] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली :हिन्दीमाध्यम कार्यान्वय निदेशालय , दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 231

उपशास्त्रीय आदि कई प्रकार के संगीत में इस ताल का प्रयोग होता है | इस ताल के सर्वसामान्य जनता में सर्वाधिक प्रचलित और लोकप्रिय होने का कारण यह है की मनुष्य के मस्तिष्क के लिए इसका चतुर्मात्रिक या अष्टमात्रिक होना इसकी गति को समझने में बहुत सहायक रहता है |

ठुमरी शैली में प्रस्तुतीकरण के अंतिम भाग में द्रुत लय में कहरवा ताल की 'लग्गी-लडियों' का भी बहुत प्रचुरता से उपयोग होता है |

लग्गियों के उदाहरण:

1 धिन धागे ताती ताडा | किन ताके ताती ताडा ||

2 धिन धाती धाती ताडा | किन ताती ताती ताडा ||

3 धेधे नाडा ऽति ताडा | केके नाडा ऽति ताडा ||

4 धिन नग ऽग नाडा | तिन नक ऽग नाडा ||

5 धिन कता ऽक धिन | तिन कता ऽक धिन ||

6 धा गेगे नक धिंऽ | ता केके नक धिंऽ ||

7 ताधि ताना तक धिं | ताति ताना तक धिंऽ ||

3) ताल -- दीपचंदी / चौदह मात्रा वाला चाँचर [167]

मात्रा- 14

खंड- 4, प्रथम और तृतीय खंड में 3-3 तथा द्वितीय और चतुर्थ खंडमें 4-4 मात्राएँ (3+4+3+4)

ताली 1,4 और 11 पर, खाली 8 पर

ठेका-

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	1
बोल	धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	ति	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ	धा
चिह्न	x			2				o			3				x

[167] श्रीवास्तव, गि. च. (2008). *ताल परिचय भाग एक.* इलाहबाद: रूबी प्रकाशन. पृष्ठ 122

4) ताल -- जत / सोलह मात्रा वाला चाँचर

मात्रा- 16

खंड-4, (4+4+4+4)

ताली 1,5 और 13 पर, खाली 9 पर

ठेका-

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	1
बोल	धा	ऽ	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	ऽ	धिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ	धा
चिह्न	x				2				o				3				x

5) ताल – पंजाबी त्रिताल/ सितारखानी

मात्रा- 16

खंड- 4 (4+4+4+4)

ताली 1,5 और 13 पर, खाली 9 पर

ठेका-

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	1
बोल	धा	ऽधि	ऽक	धा	धा	ऽधि	ऽक	धा	धा	ऽति	ऽक	ता	ता	ऽधि	ऽक	धा	धा
चिह्न	x				2				o				3				x

6) ताल-- त्रिताल

मात्रा- 16

खंड- 4 (4+4+4+4)

ताली 1,5 और 13 पर, खाली 9 पर

ठेका-

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	1
बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा	धा
चिह्न	x				2				o				3				x

- ठुमरी शैली में व्यवहृत कहरवा तथा दादरा ताल क्रमश: चतस्र और तिस्र जाति के तालों के सरलतम उदाहरण हैं | ये दोनों ताल लोक संगीत एवं सुगम संगीत में प्रचुरता से उपयुक्त होते हैं | ठुमरी शैली में प्रस्तुतीकरण में इनका विपुल प्रयोग ठुमरी में निहित लोकतत्व को सूचित करता है |

4.2.4 प्रकाशित ठुमरी की पुस्तकों में विविध ताल में रचनाओं की संख्या:

ताल	रचनाओं की संख्या
आडा चौताल	1
एकताल	1
एकताल	6
कहरवा	6
चाँचर	1
छक्का ताल	1
जतताल	16
त्रिताल	104
त्रिताल ठेका जलद त्रिताल	1
त्रिताल,तेवरा,रूपक,झूमरा,धमार	1
त्रिताल,पंचक,छक्का,खम्सा	1
दादरा	24
दीपचंदी	47
दीपचंदी, आडा चौताल, धमार	1
द्रु. त्रिताल	1
द्रुत कहरवा	4
द्रुत केहरवा	9
द्रुत दादरा	16
द्रुत दीपचंदी	4

म. झपताल	1
म. पंजाबी त्रिताल	5
म.त्रिताल	24
रूपक	1
वि. त्रिताल	3
वि. त्रिताल	1
वि. त्रिताल पंजाबी ठेका	3
वि. दीपचंदी	6
वि. दीपचंदी	1
वि. दीपचन्दी	1
वि. पंजाबी त्रिताल	5
वि. रूपक	1
वि. रूपक	1
वि. सितारखानी	4
वि.दीपचंदी	1
वि.पंजाबी त्रिताल	3
विलंबित दादरा	2
सितारखानी	2
सूलताल	3
(blank)	2
अध्धा त्रिताल	6
Grand Total	321

4.2.5 संग्रहित ठुमरी के प्रस्तुतीकरण के रिकॉर्डिंग्स में विविध तालों में रचनाओं की संख्या :

ताल	रचनाओं की संख्या

अध्धा/पंजाबी	2
एकताल	2
कहरवा	37
जतताल (१६ मात्रा)	35
दादरा	51
म. त्रिताल	1
म.त्रिताल	8

म.दीपचंदी	16
वि. दीपचंदी	21
वि.त्रिताल	3
म.पंजाबी त्रिताल	2
वि.पंजाबी त्रिताल	2
जत १४ मात्रा	6
वि. दादरा	1
कहरवा	1
वि. दादरा	1

- विलंबित या मध्य लय की रचनाओं में प्रयुक्त जत या दीपचंदी या त्रिताल जैसे तालों में मात्राओं के बोल सरल हैं और एक ही रचना को एक से अधिक ताल का प्रयोग करके भी प्रस्तुत किया जाता है |
- ठुमरी शैली की रचनाओं के प्रस्तुतीकरण के अंत में या कभी कभी बीच बीचमें तबले पर लग्गी-लड़ी बजाई जाती है और गाने में दून के साथ या ऐसे ही विस्तार करते हैं | यह प्रक्रिया लोक संगीत के प्रस्तुतीकरण से बड़ी साम्यता रखती हुई जान पड़ती है |

4.2.6 'लग्गी' / 'लड़ी' विभाग का प्रस्तुतिकरण

सामान्य रूप से ठुमरी विधा के अंतर्गत किसी भी गीत प्रकार के प्रस्तुतीकरण के दौरान जब गायक/गायिका द्वारा अंतरा का विस्तार समाप्त होते ही या बीच बीच में भी (पंजाब अंग के प्रस्तुतीकरण) तबले की संगत में बदलाव लाया जाता है | जो भी ताल पहले से बज रहा हो उसकी लगभग दुगुनी लय में तबला वादक तीन ताल के बोल बजाने लगता है और गायक भी अपने गायन की लय उसी प्रकार बनाता है | इस नई लय में गायक स्थाई और उसके मुख्य बोलों को गाता है | इसी दौरान वह स्वर के विभिन्न उतार-चढ़ाव के साथ गायन जारी रखता है | इस दौरान तबला वादक तीनताल के बोलों से कहरवा के वादन पर आ जाता है और विभिन्न प्रकार की लग्गी-लड़ी बजाकर सुन्दरता में वृद्धि करता है और गायक भी लग्गी-लड़ी के साथ विभिन्न प्रकार के सुन्दर बोल, छोटी योग्य तानें इत्यादि लेकर काव्य के शब्दों का विस्तार करता रहता है | इस लग्गी-लड़ी के साथ विस्तार की क्रिया के अंत में स्थायी के मुखड़े के बोल लेकर सम पे आकर मिलते है और प्रस्तुति समाप्त होती है अथवा मूल लय-ताल में आगे बढती है |

ठुमरी विधा में दून का या लग्गी-लड़ी के विभाग का महत्त्व मुख्य दो प्रकार से है-

1. इस क्रिया के दौरान तबला वादक को अपनी कला कौशल्य को भली भाँती दिखने का अवसर मिलता है | सामान्य रूप से ठुमरी विलंबित लय में या मध्य या द्रुत लय में प्रस्तुत हुई हो, जब तक दूं प्रारंभ नहीं होती तबले की संगत में किसी भी प्रकार की क्लिष्टता की अनुमति नहीं रहती | गायक की अनुकूलता के अनुसार एवं जितना हो सके उतना सरल ठेका ही अपेक्षित रहता है | जैसे ही दून की क्रिया का आरम्भ होता है वैसे तबले पर लग्गी-लड़ी, रेले जैसे विभिन्न प्रकारों का वादन शुरू होता है | तबला वादक को एक निश्चित सीमा के अन्दर वादन की स्वतंत्रता मिल जाती है और वह अपन इच्छानुसार मनोरंजक बोलों का वादन में प्रयोग करता है |

2. इस क्रिया के द्वारा प्रस्तुतीकरण में लय की दृष्टी से चमत्कृति और विविधता लाने में बड़ी सहायता मिलती है | ध्वनि के विभिन्न उतार-चढ़ाव के साथ बोलों को प्रयोग करने की क्रिया ताल की लग्गी-लड़ियों के साथ समान्तर चलती रहती है, जिससे एक विशिष्ट प्रकार के आनंददायी वातावरण की निर्मिती होती है | श्रोतागण को विविध सांगीतिक आनंदानुभूति कराने के लिए भी इसका बड़ा महत्त्व है |

उत्तर भारतीय लोक संगीत की कई सारे लोकसंगीत के प्रकारों में गीत के अंतरे के अंत में या गीत के अंत में इस प्रकार बढ़ी हुई लय- दुगुन/चौगुन में स्थायी के मुखड़े की पंक्ति पुन: पुन: दोहराकर गाने-बजाने की प्रथा दृष्टिगोचर होती है | ठुमरी के मूल भी उत्तर भारतीय लोक संगीत के प्रकारों में रहें हैं तथा वर्तमान समय में कुछ लोक संगीत के प्रकारों का समावेश ठुमरी विधा के अंतर्गत किए जाने के कारण इस दुगुन में लग्गी-लड़ी के

साथ प्रस्तुति करने की क्रिया एक महत्वपूर्ण अंग हो गया है और इसके बिना ठुमरी की कल्पना करना आज के समय में कठिन है | यह ठुमरी के ताल पक्ष में निहित लोक तत्व को सूचित करती है |

****